अध्याय तीन

चुनाव और प्रतिनिधित्व

परिचय

क्या आपने कभी शतरंज खेला है? यदि उसमें काला घोड़ा ढाई घर चलने के बजाय सीधा चलने लगे तो क्या होगा? या, क्रिकेट के खेल में यदि अंपायर न हो तो क्या होगा? प्रत्येक खेल में हमें कुछ नियमों का पालन करना पड़ता है। उन नियमों को बदल दिया जाय तो खेल का परिणाम भी बदल जायेगा। इसी तरह, प्रत्येक खेल में एक निष्पक्ष अंपायर होना चाहिए जिसके निर्णयों को सभी खिलाड़ी स्वीकार कर लें। खेल शुरू करने से पहले ही हमें नियमों और अंपायर के बारे में सहमति बनानी पड़ेगी। जो खेल के बारे में सत्य है वही चुनाव के बारे में भी सत्य है। चुनाव संपन्न कराने के भिन्न-भिन्न नियम और व्यवस्थाएँ हैं। चुनाव का परिणाम इस पर निर्भर करता है कि हमने कैसे नियम बनाये हैं। हमें चुनावों को निष्पक्ष ढंग से कराने के लिए एक मशीनरी भी चाहिये। चूँकि ये दोनों ही निर्णय चुनावी राजनीति का खेल शुरू होने से पहले ही लिए जाने चाहिये, इसलिए इन्हें सरकार पर नहीं छोड़ा जा सकता। अतः चुनाव के बारे में इन मूलभूत निर्णयों को लोकतांत्रिक देश के संविधान में लिख दिया जाता है।

इस अध्याय में हम चुनाव और प्रतिनिधित्व के बारे में संवैधानिक प्रावधानों का अध्ययन करेंगे। अपने संविधान में जिस चुनाव पद्धति को स्वीकार किया गया है हम उसके महत्त्व और चुनाव कराने की निष्पक्ष मशीनरी से संबंधित संवैधानिक प्रावधानों के आशय पर प्रकाश डालेंगे। इस संबंध में संविधान के प्रावधानों को संशोधित करने के लिए जो सुझाव दिये गये हैं हम उन्हें भी देखेंगे। इस अध्याय को पढ़ने से आपको निम्नलिखित बातों का पता चलेगा –

- *चुनाव की विभिन्न विधियाँ;*
- *अपने देश की चुनाव-व्यवस्था की विशेषताएँ;*
- *स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव कराने के प्रावधानों का महत्त्व; और*
- *चुनाव सुधार पर होने वाली बहस।*

चुनाव और लोकतंत्र

आइये हम अपने से ही चुनाव और प्रजातंत्र के बारे में दो प्रश्न पूछ कर अध्याय की शुरुआत करें।

- क्या बिना चुनाव के लोकतंत्र कायम रह सकता है?
- क्या बिना लोकतंत्र के चुनाव हो सकता है?

पिछली कक्षाओं में हमने जो कुछ भी पढ़ा उसके उदाहरणों का प्रयोग करते हुए हमें इन प्रश्नों पर चर्चा करनी चाहिये।

कार्टून बूझें

17 फरवरी 1957

शंकर, © चिल्ड्रंस बुक ट्रस्ट

कहा जाता है कि चुनाव लोकतंत्र का त्यौहार है लेकिन इस कार्टून में उसे एक आफत के रूप में दिखाया गया है। क्या यह लोकतंत्र के लिए अच्छा है?

पहला प्रश्न हमें एक बड़े लोकतंत्र में चुनाव की आवश्यकता के बारे में याद दिलाता है। कोई भी निर्णय लेने में सभी नागरिक प्रत्यक्ष रूप से भाग नहीं ले सकते। अत: लोग अपने प्रतिनिधियों को चुनते हैं। इसलिए, चुनाव महत्त्वपूर्ण हो जाता है। हम जब भी भारतीय लोकतंत्र के बारे में सोचते हैं तो सहज ही हमारा ध्यान पिछले चुनावों पर चला जाता है। आज चुनाव पूरी लोकतांत्रिक प्रक्रिया के जाने-पहचाने प्रतीक हो गये हैं। हम प्राय: प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष लोकतंत्र में अंतर करते हैं। प्रत्यक्ष लोकतंत्र में नागरिक रोजमर्रा के फ़ैसलों और सरकार चलाने में सीधे भाग लेते हैं। प्राचीन यूनान के नगर-राज्य प्रत्यक्ष लोकतंत्र के उदाहरण माने जाते हैं। अनेक लोगों की स्थानीय सरकारें, खास तौर से ग्राम सभाएँ, प्रत्यक्ष प्रजातंत्र के निकटतम उदाहरण हैं। लेकिन जब लाखों और करोड़ों लोगों को निर्णय लेना हो, तो इस प्रकार के प्रत्यक्ष लोकतंत्र को व्यवहार में नहीं लाया जा सकता। इसलिए जनता के शासन का अर्थ सामान्यत: जनता के प्रतिनिधियों के द्वारा चलने वाले शासन से है।

ऐसी व्यवस्था में नागरिक अपने प्रतिनिधियों को चुनते हैं जो देश के शासन और प्रशासन को चलाने में सक्रिय रूप से भाग लेते हैं। इन प्रतिनिधियों को चुनने की विधि को चुनाव या निर्वाचन कहते हैं। अत: महत्त्वपूर्ण निर्णय लेने और प्रशासन चलाने में नागरिकों की सीमित भूमिका है। वे इन नीतियों के निर्माण में बहुत सक्रिय रूप से सम्मिलित नहीं होते। नागरिक उसमें अप्रत्यक्ष रूप से, अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों के माध्यम से, सम्मिलित होते हैं। जिस व्याख्या में सभी प्रमुख निर्णय निर्वाचित प्रतिनिधियों के माध्यम से लिए जाएँ उसमें प्रतिनिधियों के निर्वाचन का तरीका बहुत महत्त्वपूर्ण हो जाता है।

दूसरा प्रश्न हमें इस बात की याद दिलाता है कि सभी चुनाव लोकतांत्रिक नहीं होते। बहुत सारे गैर-लोकतांत्रिक देशों में भी चुनाव होते हैं। वास्तव में गैर-लोकतांत्रिक शासक स्वयं को लोकतांत्रिक साबित करने के लिए बहुत आतुर रहते हैं। इसके लिए वे चुनावों को ऐसे ढंग से कराते हैं कि उनके शासन को कोई खतरा न हो। क्या आप ऐसे कुछ गैर-लोकतांत्रिक चुनावों के उदाहरण दे सकते हैं? आपकी राय में कौन-सी बात एक लोकतांत्रिक चुनाव को एक गैर-लोकतांत्रिक चुनाव से अलग करती है? किसी देश में चुनावों को लोकतांत्रिक ढंग से संपन्न कराना सुनिश्चित करने के लिए क्या करना चाहिये?

इसी बिंदु पर संविधान की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। एक लोकतांत्रिक देश का संविधान चुनावों के लिए कुछ मूलभूत नियम बनाता है, और इस संबंध में विस्तृत नियम-कानून बनाने का काम विधायिका पर छोड़ देता है। ये मूलभूत नियम सामान्यत: हमें बताते हैं कि –

- कौन मत देने के लिए योग्य है?
- कौन चुनाव लड़ने के लिए योग्य है?
- कौन चुनाव की देख-रेख करेगा?
- मतदाता अपना प्रतिनिधि कैसे चुनेंगे?
- मतगणना कैसे होगी और प्रतिनिधियों का चुनाव कैसे होगा?

अन्य लोकतांत्रिक संविधानों की भाँति भारत का संविधान भी इन सभी प्रश्नों का उत्तर देता है। आप देख सकते है कि इसमें पहले तीन प्रश्नों का लक्ष्य एक स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव है, जिसे लोकतांत्रिक चुनाव कहा जा सके। अंतिम दो प्रश्नों का लक्ष्य न्यायपूर्ण प्रतिनिधित्व

इन नियमों को संविधान में लिखने की क्या ज़रूरत है? क्यों नहीं इन्हें संसद तय करती है? क्या ऐसा नहीं हो सकता कि ये नियम चुनाव से पहले सभी दल मिलकर तय करें?

है। इस अध्याय में हम चुनाव के बारे में संवैधानिक प्रावधानों के इन दो पहलुओं की चर्चा करेंगे।

खुद करें खुद सीखें

भारत तथा किसी अन्य देश के चुनावों के संबंध में अखबारों की खबरों को काटें। उन कतरनों को निम्न वर्गों में बाँटें –

(क) प्रतिनिधित्व की व्यवस्था।

(ख) मतदाताओं की योग्यता।

(ग) चुनाव आयोग की भूमिका।

यदि आपके पास इंटरनेट है, तो आप 'इलेक्शन प्रोसेस इन्फार्मेशन कलेक्शन प्रोजेक्ट' की वेबसाइट (www.epicproject.org) पर जाएँ और इन विषयों पर चार देशों के बारे में सूचनाएँ एकत्र करें।

भारत में चुनाव व्यवस्था

ऊपर आपने चुनावों की विभिन्न विधियों या व्यवस्थाओं पर गौर किया होगा। आपको आश्चर्य भी हुआ होगा कि यह सब क्या है? आपने, चुनावों के समय चुनाव-प्रचार के लिए अपनाये जाने वाले विभिन्न तरीकों के बारे में पढ़ा होगा। लेकिन चुनाव के विभिन्न तरीके क्या हैं? चुनाव संचालन करने की एक व्यवस्था है। इसके लिए प्राधिकार (authorities) और नियम भी हैं जो बताते हैं कि क्या करें और क्या न करें। क्या चुनाव व्यवस्था का यही अर्थ है? आपको आश्चर्य हो सकता है कि क्यों संविधान में यह लिखने की ज़रूरत पड़ी कि मतगणना कैसे होगी और प्रतिनिधि कैसे चुने जायेंगे। क्या यह स्वयं ही स्पष्ट नहीं? लोग जाते हैं और वोट देते हैं। जिस प्रत्याशी को अधिकतम वोट मिलते हैं, वह चुना जाता है। पूरे विश्व में ऐसे ही चुनाव होता है। हमें इसके बारे में क्यों सोचना चाहिये?

हमें इसलिए सोचना चाहिये क्योंकि यह प्रश्न उतना सरल नहीं जितना हमें लगता है। हम अपनी चुनाव व्यवस्था में ही इतना लीन हैं कि हमें लगता है कि कोई और तरीका हो ही नहीं सकता। लोकतांत्रिक चुनाव में जनता वोट देती है और उसकी इच्छा ही यह तय करती है कि कौन चुनाव जीतेगा। लेकिन लोगों के द्वारा अपनी रुचि को व्यक्त करने के अनेक तरीके हो सकते हैं और उनकी पसंद की गणना करने की भी बहुत सारी विधियाँ हो सकती हैं। खेल के इन अलग-अलग नियमों से इस बात का फ़ैसला बदल सकता है कि जीत किसकी होगी। कुछ नियम ऐसे हैं जिनमें बड़े दलों

खुद करें खुद सीखें

अपनी कक्षा में चुनाव सम्पन्न कर चार कक्षा-प्रतिनिधियों को चुनें। चुनाव निम्न तीन अलग-अलग तरीकों से करें :

- प्रत्येक छात्र एक वोट दे सकता है। जिन चार छात्रों को सबसे अधिक वोट मिले उन्हें चुना जाय।
- प्रत्येक छात्र के पास चार वोट हैं, जिसे वे चाहें तो एक ही प्रत्याशी को दे दें या उसे अन्य प्रत्याशियों में बाँट दें। जिन चार छात्रों को सबसे अधिक वोट मिले उन्हें चुना जाय।
- प्रत्येक छात्र विभिन्न प्रत्याशियों को वरीयता क्रम में वोट दे और गणना की विधि वह हो जो राज्यसभा सदस्यों के निर्वाचन में प्रयोग की जाती है (इस विधि का आगे वर्णन किया गया है)।

क्या इन सभी तरीकों से चुनाव कराने पर वही चार लोग चुनाव जीते ? यदि नहीं, तो क्या फर्क पड़ा ? और क्यों?

को लाभ पहुँचता है; कुछ नियमों से छोटे खिलाड़ियों (दलों) को मदद मिलती है। कुछ नियम बहुसंख्यक समुदाय के हित में जाते हैं, तो अन्य अल्पसंख्यकों को संरक्षण देते हैं। आइये हम एक नाटकीय उदाहरण से समझें कि ऐसा कैसे होता है।

'जो सबसे आगे वही जीते'

इस अखबार की कतरन को देखिये।

यह भारतीय लोकतंत्र के एक ऐतिहासिक क्षण के बारे में है। 1984 के लोक

नवभारत टाइम्स

रविवारीय संस्करण

पहली बार कांग्रेस को तीन-चौथाई बहुमत

हेगड़े सरकार का इस्तीफा

50 प्रतिशत से भी कम वोट और 80 प्रतिशत से अधिक सीटें ! क्या यह ठीक है? हमारे संविधान निर्माताओं ने ऐसी गड़बड़ व्यवस्था को कैसे स्वीकार किया?

सभा चुनाव में काँग्रेस पार्टी ने 543 में से 415 सीटें जीतीं–जो कुल सीटों के 80 प्रतिशत से भी अधिक है। लोक सभा चुनावों में किसी दल को ऐसी सफलता कभी नहीं मिली। इस चुनाव से क्या पता चलता है?

काँग्रेस पार्टी को तीन-चौथाई सीटें मिलीं। क्या इसका यह अर्थ है कि प्रत्येक पाँच भारतीय नागरिकों में से चार ने काँग्रेस को वोट दिया ? वास्तव में नहीं। नीचे दी गयी तालिका को देखें। काँग्रेस पार्टी को 48 प्रतिशत वोट मिले। इसका अर्थ यह हुआ कि कुल मिलाकर जितने लोगों ने मतदान किया उसमें केवल 48 प्रतिशत लोगों ने काँग्रेस को वोट दिया, लेकिन पार्टी को 80 प्रतिशत से भी अधिक सीटें मिलीं। अन्य दलों के प्रदर्शन को देखें। भाजपा को 7.4 प्रतिशत वोट मिले लेकिन एक प्रतिशत से कम सीटें मिली। ऐसा कैसे हुआ ?

1984 के लोकसभा चुनाव में प्रमुख
दलों द्वारा प्राप्त वोट और सीटें

पार्टी	. .. (%)	सीट
काँग्रेस	48.0	415
भाजपा	7.4	2
जनता पार्टी	6.7	10
लोकदल	5.7	3
माकपा	5.7	22
तेलगु देशम	4.1	30
द्रमुक	2.3	2
अन्नाद्रमुक	1.6	12
अकाली दल	1.0	7
असम गण परिषद्	1.0	7

ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि हम अपने देश में चुनाव की एक विशेष विधि का पालन करते हैं। इस व्यवस्था में –

- पूरे देश को 543 निर्वाचन क्षेत्रों में बाँट दिया गया है;
- प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र से एक प्रतिनिधि चुना जाता है; और
- उस निर्वाचन क्षेत्र में जिस प्रत्याशी को सबसे अधिक वोट मिलते हैं उसे निर्वाचित घोषित कर दिया जाता है।

यह ध्यान रखना ज़रूरी है कि इस व्यवस्था में जिस प्रत्याशी को अन्य सभी प्रत्याशियों से अधिक वोट मिल जाते हैं उसे ही निर्वाचित घोषित कर दिया जाता है। विजयी प्रत्याशी के लिए यह ज़रूरी नहीं कि उसे कुल मतों का बहुमत मिले। इस विधि को 'जो सबसे आगे वही जीते' प्रणाली (फर्स्ट-पास्ट-द-पोस्ट सिस्टम) कहते हैं। चुनावी दौड़ में जो प्रत्याशी अन्य प्रत्याशियों के मुकाबले सबसे आगे निकल जाता है वही विजयी होता है। इसे बहुलवादी व्यवस्था भी कहते हैं। संविधान इसी विधि को स्वीकार करता है।

आइये अपने उदाहरण की ओर लौटें। काँग्रेस पार्टी को प्राप्त मतों के अनुपात से ज़्यादा सीटें इसलिए मिलीं क्योंकि अनेक निर्वाचन क्षेत्रों में जहाँ उसके प्रत्याशी जीते उन्हें 50 प्रतिशत से कम वोट मिले। यदि चुनाव मैदान में कई प्रत्याशी हों तो जीतने वाले प्रत्याशी को प्रायः 50 प्रतिशत से कम वोट मिलते हैं। सभी हारने वाले प्रत्याशियों के वोट बेकार चले जाते हैं क्योंकि इन वोटों के आधार पर उन प्रत्याशियों या दलों को कोई सीट नहीं मिलती। मान लीजिये कि किसी पार्टी को प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र में 25 प्रतिशत वोट मिलते हैं लेकिन अन्य प्रत्याशियों को उससे भी कम वोट मिलते हैं। उस स्थिति में केवल 25 प्रतिशत या उससे भी कम वोट पा कर कोई दल सभी सीटें जीत सकता है।

समानुपातिक प्रतिनिधित्व

आइये इसकी तुलना इज़राइल में होने वाले चुनावों से करें जहाँ एक बिलकुल भिन्न चुनाव व्यवस्था का पालन किया जाता है। इज़राइल में मतगणना के बाद, प्रत्येक पार्टी को संसद में उसी अनुपात में सीटें दे दी जाती हैं जिस अनुपात में उन्हें वोटों में हिस्सा मिलता है (आगे बॉक्स देखें)। प्रत्येक पार्टी चुनावों से पहले अपने प्रत्याशियों की एक प्राथमिकता सूची जारी कर देती है और अपने उतने ही प्रत्याशियों को उस प्राथमिकता सूची से चुन लेती है जितनी सीटों का कोटा उसे दिया जाता है। चुनावों की इस व्यवस्था को 'समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली' कहते हैं। इस प्रणाली में किसी पार्टी को उतनी ही प्रतिशत सीटें मिलती हैं जितने प्रतिशत उसे वोट मिलते हैं।

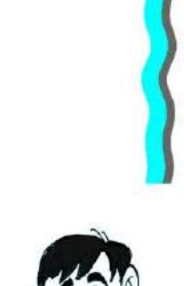

यह तो बड़ा भ्रम पैदा करने वाला है। इस व्यवस्था में हमें कैसे पता चलेगा कि हमारा सांसद या विधायक कौन है? यदि मुझे कोई काम कराना है, तो मैं किसके पास जाऊँगा?

समानुपातिक प्रतिनिधित्व के दो प्रकार होते हैं। कुछ देशों जैसे इज़राइल या नीदरलैंड में पूरे देश को एक निर्वाचन क्षेत्र माना जाता है और प्रत्येक पार्टी को राष्ट्रीय चुनावों में प्राप्त वोटों के अनुपात में सीटें दे दी जाती हैं। दूसरा तरीका अर्जेंटीना व पुर्तगाल में देखने को मिलता है जहाँ पूरे देश को

बहु-सदस्यीय निर्वाचन क्षेत्रों में बाँट दिया जाता है। प्रत्येक पार्टी प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र के लिए अपने प्रत्याशियों की एक सूची जारी करती है जिसमें उतने ही नाम होते हैं जितने प्रत्याशियों को उस निर्वाचन क्षेत्र से चुना जाना होता है। इन दोनों ही रूपों में मतदाता राजनीतिक दलों को वोट देते हैं न कि उनके प्रत्याशियों को। एक पार्टी को किसी निर्वाचन क्षेत्र में जितने मत प्राप्त होते हैं उसी आधार पर उसे उस निर्वाचन क्षेत्र में सीटें दे दी जाती हैं। अत: किसी निर्वाचन क्षेत्र के प्रतिनिधि वास्तव में राजनीतिक

इज़राइल में समानुपातिक प्रतिनिधित्व

इज़राइल में चुनावों के लिए समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली अपनाई गई है। वहाँ विधायिका (नेसेट) के चुनाव प्रत्येक चार वर्ष पर होते हैं। प्रत्येक पार्टी अपने प्रत्याशियों की एक सूची जारी करती है लेकिन मतदाता प्रत्याशियों को नहीं वरन् पार्टियों को वोट देते हैं। प्रत्येक पार्टी को प्राप्त वोटों के अनुपात में ही विधायिका में सीटें मिलती हैं। इससे सीमित जनाधार वाली छोटी पार्टियों को भी विधायिका में कुछ प्रतिनिधित्व मिल जाता है (शर्त यह है कि विधायिका में सीट पाने के लिए न्यूनतम 1.5 प्रतिशत वोट मिलना चाहिये)। इससे प्राय: बहुदलीय गठबंधन सरकारें बनती हैं।

निम्नलिखित सारणी में 2003 के नेसेट के चुनाव-परिणाम दिये गये हैं। इसके आधार पर आप यह पता लगा सकते हैं कि विभिन्न पार्टियों को कितने प्रतिशत वोट मिले ।

पार्टी	सीट	सीटों का प्रतिशत	मतों का प्रतिशत
लिकुड	37		
शास	11		
नेशनल यूनियन	7		
नेशनल रिलीजियस पार्टी	5		
यू टी जे	5		
इज़राइल बी अलीया	2		
लेबर	19		
शिनुई	15		
अरब पार्टीज़	9		
मेरेट्ज़	6		
अम एहद	4		
कुल सीटें	120		

दलों के प्रतिनिधि होते हैं। भारत में हमने समानुपातिक प्रतिनिधित्त्व प्रणाली को केवल अप्रत्यक्ष चुनावों के लिए ही सीमित रूप में अपनाया है। हमारा संविधान राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, राज्य सभा और विधान परिषदों के चुनावों के लिए समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली का एक तीसरा और जटिल स्वरूप प्रस्तावित करता है।

'सर्वाधिक वोट पाने वाले की जीत' और 'समानुपातिक प्रतिनिधित्व' चुनाव व्यवस्था की तुलना

सर्वाधिक वोट पाने वाले की जीत	समानुपातिक प्रतिनिधित्व
पूरे देश को छोटी-छोटी भौगोलिक इकाइयों में बाँट देते हैं जिसे निर्वाचन क्षेत्र या जिला कहते हैं?	किसी बड़े भौगोलिक क्षेत्र को एक निर्वाचन क्षेत्र मान लिया जाता है। पूरा का पूरा देश एक निर्वाचन क्षेत्र गिना जा सकता है।
हर निर्वाचन क्षेत्र से केवल एक प्रतिनिधि चुना जाता है।	एक निर्वाचन क्षेत्र से कई प्रतिनिधि चुने जा सकते हैं।
मतदाता प्रत्याशी को वोट देता है।	मतदाता पार्टी को वोट देता है।
पार्टी को प्राप्त वोटों के अनुपात से अधिक या कम सीटें विधायिका में मिल सकती हैं।	हर पार्टी को प्राप्त मत के अनुपात में विधायिका में सीटें हासिल होती हैं।
विजयी उम्मीदवार को जरूरी नहीं कि वोटों का बहुमत (50%+1) मिले	विजयी उम्मीदवार को वोटों का बहुमत हासिल होता है।
उदाहरण – यूनाइटेड किंगडम और भारत	जैसे कि इज़राइल और नीदरलैंड

राज्य सभा के चुनावों में समानुपातिक प्रतिनिधित्व की प्रणाली

समानुपातिक प्रतिनिधित्व का एक तीसरा स्वरूप हमें भारत में राज्य सभा चुनावों में देखने को मिलता है : इसे 'एकल संक्रमणीय मत प्रणाली' कहते हैं। प्रत्येक राज्य को राज्य सभा में सीटों का निश्चित कोटा प्राप्त है। राज्यों की विधान सभा के सदस्यों द्वारा इन सीटों के लिए चुनाव किया जाता है। इसमें राज्य के विधायक ही मतदाता होते हैं। मतदाता चुनाव में खड़े सभी प्रत्याशियों को अपनी पसंद के अनुसार एक वरीयता क्रम में मत देता है। जीतने के लिए किसी प्रत्याशी को मतों का एक कोटा प्राप्त करना पड़ता है। जो निम्नलिखित फार्मूले के आधार पर निकाला जाता है।

$$\left(\frac{\text{कुल मतदान}}{\text{कुल विजयी उम्मीदवार} + 1}\right) + 1$$

उदाहरण के लिए यदि राजस्थान के 200 विधायकों को राज्य सभा के लिए चार सदस्य चुनना है तो विजयी उम्मीदवार को $\left(\frac{200}{4+1}\right)+1 \Rightarrow \frac{200}{5}+1 \Rightarrow 40+1 \Rightarrow 41$ वोटों की ज़रूरत पड़ेगी।

जब मतगणना होती है तब उम्मीदवारों को प्राप्त 'प्रथम वरीयता' वोट गिना जाता है। प्रथम वरीयता वोटों की गणना के बाद, यदि प्रत्याशियों की वांछित संख्या वोटों का कोटा नहीं प्राप्त कर पाती तो पुनः मतगणना की जाती है। ऐसे उस प्रत्याशी को मतगणना से निकाल दिया जाता है जिसे प्रथम वरीयता वाले सबसे कम वोट मिले हों। उसके वोटों को अन्य प्रत्याशियों में बाँट दिया जाता है; ऐसा करने में प्रत्येक मत पत्र पर अंकित द्वितीय वरीयता वाले प्रत्याशी को वह मत हस्तांतरित कर दिया जाता है। इस प्रक्रिया को तब तक जारी रखा जाता है जब तक वांछित संख्या (4) के बराबर प्रत्याशियों को विजयी घोषित नहीं कर दिया जाता।

भारत में 'सर्वाधिक वोट से जीत की' प्रणाली क्यों स्वीकार की गई?

इस प्रश्न के उत्तर का अनुमान लगाना बहुत कठिन नहीं है। यदि आपने ऊपर बॉक्स में राज्य सभा के चुनाव प्रक्रिया के बारे में पढ़ा होगा, तो आपकी समझ में आ गया होगा कि यह प्रक्रिया काफी जटिल है जो किसी छोटे देश में तो लागू हो सकती है पर उपमहाद्वीप जैसे विशाल देश भारत में नहीं। सर्वाधिक वोट से जीत वाली व्यवस्था की सफलता इसकी लोकप्रियता का कारण है। उन सामान्य मतदाताओं के लिए जिन्हें राजनीति और चुनाव का विशेष ज्ञान नहीं है, इस पूरी चुनाव व्यवस्था को समझना अत्यंत सरल है। इसके अतिरिक्त चुनाव के समय मतदाताओं के पास स्पष्ट विकल्प होते हैं।

मतदाताओं को वोट करते समय किसी प्रत्याशी या दल को केवल स्वीकृति प्रदान करना होता है। राजनीति की वास्तविकता को ध्यान में रखकर मतदाता किसी प्रत्याशी को भी वरीयता दे सकता है और किसी दल को भी। वह चाहे तो इन दोनों में, मतदान के समय, संतुलन बनाने की कोशिश भी कर सकता है। यह प्रणाली मतदाताओं को केवल दलों में ही नहीं वरन् उम्मीदवारों में भी चयन का स्पष्ट विकल्प देती है। अन्य चुनावी व्यवस्थाओं में खासतौर से समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली में, मतदाताओं को किसी एक दल को चुनने का विकल्प दिया जाता है लेकिन प्रत्याशियों का चयन पार्टी द्वारा जारी की गयी सूची के अनुसार होता है। इस प्रकार, किसी क्षेत्र विशेष का प्रतिनिधित्व करने वाला और उसके प्रति उत्तरदायी, कोई एक प्रतिनिधि नहीं होता। लेकिन सर्वाधिक वोट से जीत वाली व्यवस्था पर आधारित निर्वाचन क्षेत्रों में मतदाता जानते हैं कि उनका प्रतिनिधि कौन है और उसे उत्तरदायी ठहरा सकते हैं।

कार्टून बूझें

शंकर, © चिल्ड्रन्स बुक ट्रस्ट

29 मई 1949

इस कार्टून में भीमकाय काँग्रेस के आगे विपक्ष एक बौने के रूप में दिखाया गया है। क्या यह हमारे निर्वाचन प्रणाली का परिणाम था?

लेकिन सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि संविधान निर्माता समझते थे कि समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली पर आधारित चुनाव संसदीय प्रणाली में सरकार के स्थायित्व के लिए उपयुक्त नहीं होंगे। अगले अध्याय में हम संसदीय प्रणाली की प्रकृति के बारे में पढ़ेंगे। इस व्यवस्था की माँग है कि कार्यपालिका को विधायिका में बहुमत प्राप्त हो। आप देखेंगे कि समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली से स्पष्ट बहुमत मिलने में कठिनाई होगी क्योंकि मतों के प्रतिशत के अनुपात में विधायिका में सीटें बँट जायेंगी। सर्वाधिक

कहाँ पहुँचे? क्या समझे?

नीचे 1996 में तमिलनाडु विधान सभा चुनाव के परिणाम दिये गये हैं।

- विधान सभा की संरचना कैसी होती यदि वहाँ इज़राइल की तरह समानुपातिक प्रतिनधित्व प्रणाली होती?
- किस पार्टी का बहुमत होगा?
- कौन सरकार बनायेगा?
- इस व्यवस्था का राजनीतिक दलों के संबंधों पर क्या प्रभाव पड़ेगा?

कुल सीटें 234			
पार्टी	वोट	सीट	समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली में सीट
द्रमुक	42.1	173	
अन्नाद्रमुक	21.5	4	
काँग्रेस	5.6	...	
भाकपा	2.1	8	
माकपा	1.7	1	
टी एम सी	9.3	39	
पी एम के	3.8	4	
अन्य व स्वतंत्र	13.9	5	

मत से जीत वाली प्रणाली में अमूमन बड़े दलों या गठबंधनों को बोनस के रूप में कुछ अतिरिक्त सीटें मिल जाती हैं। ये सीटें उन्हें प्राप्त मतों के अनुपात से अधिक होती हैं। अतः यह प्रणाली एक स्थायी सरकार बनाने का मार्ग प्रशस्त कर संसदीय सरकार को सुचारू और प्रभावी ढंग से काम करने का अवसर देती है। अंत में, सर्वाधिक मत से जीत वाली प्रणाली एक निर्वाचन क्षेत्र में विभिन्न सामाजिक वर्गों को एकजुट होकर चुनाव जीतने में मदद करती है। भारत जैसे विविधताओं वाले देश में, समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली प्रत्येक समुदाय को अपनी एक राष्ट्रव्यापी पार्टी बनाने को प्रेरित करेगी। संभवतः यह बात भी हमारे संविधान बनाने वालों के दिमाग में रही होगी।

संविधान का अब तक का कामकाज संविधान-निर्माताओं की अपेक्षाओं को प्रमाणित करता है। संविधान निर्माताओं की उम्मीदों को संविधान की कार्यप्रणाली से प्राप्त अनुभव प्रमाणित करता है। सर्वाधिक मत से जीत वाली प्रणाली आम मतदाता के लिए

सरल और सुपरिचित सिद्ध हुई है। इसने केंद्र और राज्यों में बड़े दलों को स्पष्ट बहुमत प्राप्त करने में मदद की है। इस प्रणाली ने उन दलों को भी हतोत्साहित किया है जो किसी एक जाति या समुदाय से ही अपने सभी वोट प्राप्त करते हैं। समान्यत: सर्वाधिक मत से जीत वाली प्रणाली से द्विदलीय व्यवस्था उभरती है। इसका मतलब है कि सत्ता के लिए दो प्रमुख प्रतियोगी हैं और यही दोनों बारी-बारी से सत्ता प्राप्त करते हैं। नये दलों या किसी तीसरी पार्टी को इस प्रतियोगिता में सम्मिलित होने और सत्ता प्राप्त करने में कठिनाई होती है। इस संदर्भ में भारत में इस प्रणाली का अनुभव कुछ अलग है। स्वतंत्रता के बाद, यद्यपि हमने सर्वाधिक मत से जीत वाली प्रणाली अपनायी, फिर भी एक दल का वर्चस्व उभर कर सामने आया इसके साथ-साथ अनेक छोटे दल भी अस्तित्व में रहे। 1989 के बाद, भारत में बहुदलीय-गठबंधनों की कार्यप्रणाली को देखा जा सकता है। इसी के साथ, अनेक राज्यों में धीरे-धीरे द्वि-दलीय प्रतियोगिता उभर रही है। लेकिन भारतीय दलीय प्रणाली की प्रमुख विशेषता यह है कि गठबंधन सरकारों के आने से नये और छोटे दलों को सर्वाधिक मत से जीत वाली प्रणाली के बावजूद चुनावी प्रतियोगिता में प्रवेश करने का मौका मिला है।

निर्वाचन क्षेत्रों का आरक्षण

हमने पहले पढ़ा कि सर्वाधिक मत से जीत वाली प्रणाली में किसी निर्वाचन क्षेत्र में जिस किसी उम्मीदवार को सबसे अधिक वोट मिल जाता है उसे ही चुना हुआ घोषित कर दिया जाता है। इससे छोटे-छोटे सामाजिक समूहों का अहित हो जाता है। यह भारतीय सामाजिक परिवेश में और अधिक महत्त्वपूर्ण है। हमारे यहाँ जाति आधारित भेदभाव का इतिहास रहा है। ऐसी सामाजिक व्यवस्था में, सर्वाधिक मत से जीत वाली प्रणाली का परिणाम यह होगा कि दबंग सामाजिक समूह और जातियाँ हर जगह जीत जायेंगी और दलित-उत्पीड़ित सामाजिक समूहों को कोई प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं हो पायेगा। हमारे संविधान निर्माता इस कठिनाई से वाकिफ़ थे और ऐसे दलित-उत्पीड़ित सामाजिक समूहों के लिए उचित और न्यायपूर्ण प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने की आवश्यकता समझते थे।

> पृथक निर्वाचन मंडल की व्यवस्था भारत के लिए अभिशाप रही है, इसने देश की अपूरणीय क्षति की है। ··· पृथक निर्वाचन मंडल ने हमारी प्रगति को रोक दिया है। ··· हम (मुसलमान) राष्ट्र में मिल जाना चाहते हैं ··· खुदा के वास्ते मुस्लिम समुदाय के लिए किसी प्रकार के आरक्षण पर विचार न करें ···
>
> तजम्मुल हुसैन
>
> [illegible] VIII, पृष्ठ 333, 26 मई 1949

स्वतंत्रता के पूर्व भी इस विषय पर बहस हुई थी और ब्रिटिश सरकार ने 'पृथक-निर्वाचन मंडल' की शुरूआत की थी। इसका अर्थ यह था कि किसी समुदाय के प्रतिनिधि के चुनाव में केवल उसी समुदाय के लोग वोट डाल सकेंगे। संविधान सभा के अनेक सदस्यों को इस पर शंका थी। उनका विचार था कि यह व्यवस्था हमारे उद्देश्यों को पूरा नहीं करेगी। इसलिए, आरक्षित निर्वाचन क्षेत्रों की व्यवस्था को अपनाया गया। इस व्यवस्था के अंतर्गत, किसी निर्वाचन क्षेत्र में सभी मतदाता वोट तो डालेंगे लेकिन प्रत्याशी केवल उसी समुदाय या सामाजिक वर्ग का होगा जिसके लिए वह सीट आरक्षित है।

अनेक ऐसे सामाजिक समूह हैं जो पूरे देश में फैले हुए हैं। किसी एक निर्वाचन क्षेत्र में उनकी इतनी संख्या नहीं होती कि वे किसी प्रत्याशी की जीत को प्रभावित कर सकें। लेकिन पूरे देश पर नज़र डालने पर वे अच्छे खासे बड़े समूह के रूप में दिखाई देते हैं। उन्हें समुचित प्रतिनिधित्व देने के लिए आरक्षण की व्यवस्था ज़रूरी हो जाती है। संविधान अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए लोक सभा और राज्य की विधान सभाओं में आरक्षण की व्यवस्था करता है। प्रारंभ में यह व्यवस्था 10 वर्ष के लिए की गई थी पर अनेक संवैधानिक संशोधनों द्वारा इसे बढ़ा कर 2020 तक कर दिया गया है। आरक्षण की अवधि खत्म होने पर संसद इसे और आगे बढ़ाने का निर्णय ले सकती है। इन दोनों समूहों की आरक्षित सीटों का वही अनुपात है जो भारत की जनसंख्या में इनका अनुपात है। लोकसभा की 543 निर्वाचित सीटों में 84 अनुसूचित जाति और 47 अनुसूचित जनजाति (1 सितंबर 2012 की स्थिति) के लिए आरक्षित हैं।

''' लेकिन मैं भारत के आदिवासियों की ओर से कुछ कहना चाहता हूँ। ''' ब्रिटिश सरकार, प्रमुख राजनैतिक दलों और हर प्रबुद्ध भारतीय नागरिक को धन्यवाद कि उनके ही कारण हमें अब तक ऐसे अलग-थलग करके रखा गया था। जैसे किसी को चिड़ियाघर में रखा जाता है। ''' हम आपके साथ घुलने-मिलने को तैयार हैं और इसी कारण ''' हमने व्यवस्थापिकाओं में सीटों के आरक्षण की माँग पर ज़ोर दिया है। ''' हमने पृथक प्रतिनिधित्व की माँग नहीं की है। ''' 1935 के अधिनियम के अंतर्गत, पूरे भारत की सभी विधान सभाओं में 1585 में कुल 24 विधायक आदिवासी थे, ''' और केंद्र में तो एक भी नहीं था।

जयपाल सिंह
संविधान सभा के वाद-विवाद, खंड V, पृष्ठ 226, 27 अगस्त 1947

कौन से निर्वाचन क्षेत्र आरक्षित होंगे, यह कौन तय करता है? किस आधार पर यह निर्णय लिया जाता है? यह निर्णय एक स्वतंत्र संस्था द्वारा लिया जाता है जिसे परिसीमन आयोग कहते हैं। राष्ट्रपति परिसीमन आयोग का गठन करते हैं। यह चुनाव आयोग के साथ मिल कर काम करता है। इसका गठन पूरे देश में निर्वाचन क्षेत्रों की सीमा खींचने के उद्देश्य से किया जाता है। प्रत्येक राज्य में आरक्षण के लिए निर्वाचन क्षेत्रों का एक कोटा होता है जो उस राज्य में अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति की संख्या के अनुपात में होता है। परिसीमन के बाद, परिसीमन आयोग प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र में जनसंख्या की संरचना देखता है। जिन निर्वाचन क्षेत्रों में अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या सबसे ज़्यादा होती है उसे उनके लिए आरक्षित कर दिया जाता है। अनुसूचित जातियों के मामले में, परिसीमन आयोग दो बातों पर ध्यान देता है। आयोग उन निर्वाचन क्षेत्रों को चुनता है जिसमें अनुसूचित जातियों का अनुपात ज़्यादा होता है। लेकिन वह इन निर्वाचन क्षेत्रों को राज्य के विभिन्न भागों में फैला भी देता है। ऐसा इसलिए कि अनुसूचित जातियों का पूरे देश में बिखराव समरूप है। जब कभी भी परिसीमन का काम होता है, इन आरक्षित निर्वाचन क्षेत्रों में कुछ परिवर्तन कर दिया जाता है। संविधान अन्य उपेक्षित या कमज़ोर वर्गों के लिए इस प्रकार के आरक्षण की कोई व्यवस्था नहीं करता। इधर, लोकसभा और राज्यों की विधान सभाओं में महिलाओं के लिए आरक्षण की ज़ोरदार माँग उठी है। यह देखते हुये कि प्रतिनिधि संस्थाओं में बहुत कम महिलाएँ चुनी जाती हैं, उनके लिए एक-तिहाई सीटें आरक्षित करने की बात हो रही है। शहरी और ग्रामीण स्थानीय सरकारों में महिलाओं के लिए सीटें आरक्षित कर दी गई हैं। इसे हम स्थानीय सरकार वाले अध्याय में पढ़ेंगे। लोकसभा और विधान सभा में ऐसी ही व्यवस्था करने के लिए संविधान का संशोधन करना पड़ेगा। इसके लिए लोकसभा में कई बार संशोधन प्रस्ताव लाया गया, पर उसे पारित नहीं किया जा सका।

स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव

किसी भी चुनाव प्रणाली की कसौटी यह है कि वह एक स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव प्रक्रिया सुनिश्चित कर सके। यदि हम लोकतंत्र को एक जमीनी हकीकत बनाना चाहते हैं, तो यह ज़रूरी है कि चुनाव प्रणाली निष्पक्ष और पारदर्शी हो। चुनाव प्रणाली ऐसी होनी चाहिये जिससे मतदाताओं की आकांक्षाएँ चुनाव परिणामों में न्यायपूर्ण ढंग से व्यक्त हो सकें।

कहाँ पहुँचे? क्या समझे?

भारत की आबादी में मुसलमान 13.5 प्रतिशत हैं। लेकिन लोक सभा में मुसलमान सांसदों की संख्या सामान्यत: 6 प्रतिशत से थोड़ा कम रही है जो जनसंख्या में उनके अनुपात के आधे से भी कम है। यही स्थिति अधिकतर राज्य विधान सभाओं में भी है।

तीन छात्रों ने इन तथ्यों से तीन अलग-अलग निष्कर्ष निकाले। आप बतायें कि आप उनसे सहमत हैं या असहमत और क्यों?

हिलाल – यह सर्वाधिक मत से जीत वाली प्रणाली के अन्याय होने को दिखाता है। हमें समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली अपनानी चाहिये थी।

आरिफ – यह अनुसूचित जातियों और जनजातियों को आरक्षण देने के औचित्य को बताता है। आवश्यकता इस बात की है कि मुसलमानों को भी उसी तरह का आरक्षण दिया जाय, जैसा अनुसूचित जातियों और जनजातियों को दिया गया।

सबा – सभी मुसलमानों को एक जैसा मानकर बात करने का कोई मतलब नहीं है। मुसलमान महिलाओं को इसमें कुछ भी नहीं मिलेगा। हमें मुसलमान महिलाओं के लिए अलग आरक्षण चाहिये।

मैं इतनी समझ रखती हूँ कि भविष्य में अपने करियर को चुन सकूँ और इतनी उम्रदराज़ हूँ कि ड्राइविंग लाइसेंस बना सकूँ, तो क्या मैं इतनी बड़ी नहीं कि वोट डाल सकूँ? यदि ये कानून मुझपर लागू होते हैं, तो मैं इन कानूनों को बनाने वाले के बारे में फ़ैसला क्यों नहीं ले सकती?

सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार और चुनाव लड़ने का अधिकार

चुनाव का तरीका निर्धारित करने के अतिरिक्त संविधान चुनावों के बारे में दो अन्य मूल प्रश्नों के उत्तर देता है – मतदाता कौन है और कौन चुनाव लड़ सकता है? इन दोनों बिंदुओं पर हमारा संविधान पूर्ण रूप से स्थापित लोकतांत्रिक परंपराओं का पालन करता है।

आप जानते हैं कि लोकतांत्रिक चुनावों में देश के सभी वयस्क नागरिकों को चुनाव में वोट देने का अधिकार होना ज़रूरी है। इसी को सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार के नाम से जानते हैं। अनेक देशों में नागरिकों को इस अधिकार को प्राप्त करने के लिए अपने शासकों से बहुत लंबी लड़ाई लड़नी पड़ी। बहुत से देशों में तो महिलाओं को यह अधिकार काफी देर से और बड़े संघर्ष के बाद मिला। भारतीय संविधान निर्माताओं ने एक महत्वपूर्ण निर्णय के द्वारा प्रत्येक वयस्क भारतीय नागरिक को वोट देने का अधिकार प्रदान किया।

1989 तक, 21 वर्ष से ऊपर के भारतीय नागरिकों को वयस्क भारतीय माना जाता था। 1989 में संविधान के एक संशोधन के द्वारा इसे घटा कर 18 वर्ष कर दिया गया। वयस्क मताधिकार सभी नागरिकों को अपने प्रतिनिधियों की चयन प्रक्रिया में भाग लेने का अवसर प्रदान करता है। यह समानता और गैर-भेदभाव के सिद्धांत के अनुरूप है, जिसका अध्ययन हमने अधिकारों वाले अध्याय में किया है। अनेक लोग पहले और आज भी ऐसा मानते हैं कि बिना शैक्षणिक योग्यता के सभी को वोट देने का अधिकार देना सही निर्णय नहीं था। लेकिन हमारे संविधान निर्माताओं को सभी नागरिकों की योग्यता और महत्त्व में समान रूप से विश्वास था कि वे समाज, देश और अपने निर्वाचन क्षेत्र के हित में निर्णय ले सकते हैं।

जो वोट देने के अधिकार के बारे में सच है, वही चुनाव लड़ने के अधिकार के बारे में भी सच है। सभी नागरिकों को चुनाव में खड़े होने और जनता का प्रतिनिधि होने का अधिकार है। लेकिन विभिन्न पदों पर चुनाव लड़ने की न्यूनतम आयु अर्हता भिन्न-भिन्न होती है। उदाहरण के लिए लोक सभा या विधान सभा चुनाव में खड़े होने के लिए उम्मीदवार को कम से कम 25 वर्ष का होना चाहिए। कुछ और भी प्रतिबंध हैं। जैसे एक कानूनी प्रतिबंध यह है कि यदि किसी व्यक्ति को किसी अपराध के लिए दो या दो से अधिक वर्षों के लिए जेल हुई हो, तो वह चुनाव लड़ने के योग्य नहीं है। लेकिन चुनाव लड़ने के लिए आय, शिक्षा, वर्ग या लिंग के आधार पर कोई प्रतिबंध नहीं है। इस रूप में, हमारी चुनाव व्यवस्था सभी नागरिकों के लिए खुली हुई है।

कार्टून बूझें

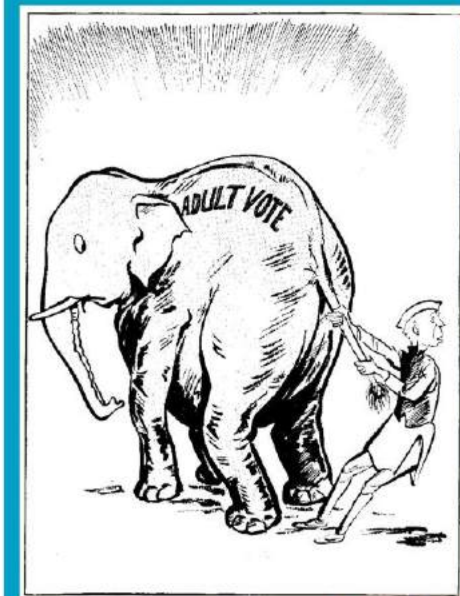

21 अक्तूबर 1951

शंकर, ©, चिल्ड्रन बुक ट्रस्ट

सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार को हाथी के रूप में क्यों दिखाया गया है। क्या यह संभालने योग्य नहीं है? या यह उस कहानी की तरह है जिसमें कई अंधे हाथी के अलग-अलग अंगों के आधार पर उसे बताने की कोशिश करते हैं?

स्वतंत्र निर्वाचन आयोग

भारत में चुनाव प्रक्रिया को स्वतंत्र और निष्पक्ष बनाने के लिए कई प्रयास किए गए हैं। एक स्वतंत्र निर्वाचन आयोग की स्थापना इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण कदम है, जो चुनावों के संचालन और देख-रेख के लिए बनाया गया है। क्या आप जानते हैं कि अनेक देशों में चुनाव कराने के लिए किसी स्वतंत्र मशीनरी का अभाव है।

अनुच्छेद 324(1) – ''इस संविधान के अधीन संसद और प्रत्येक राज्य के विधान मंडल के लिए कराये जाने वाले सभी निर्वाचनों के लिए तथा राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के पदों के निर्वाचनों के लिए निर्वाचक नामावली तैयार कराने का और उन सभी निर्वाचनों के संचालन का अधीक्षण, निर्देशन और नियंत्रण एक आयोग में निहित होगा (जिसे इस संविधान में निर्वाचन आयोग कहा गया है)।''

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 324 'निर्वाचनों के लिए मतदाता सूची तैयार कराने और चुनाव के संचालन का अधीक्षण, निर्देशन और नियंत्रण' का अधिकार एक स्वतंत्र निर्वाचन आयोग को देता है। संविधान के ये शब्द बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि ये निर्वाचन आयोग को चुनावों से संबंधित हर बात पर अंतिम निर्णय करने की भूमिका सौंपते हैं। सर्वोच्च न्यायालय ने भी संविधान की इस व्याख्या से सहमति व्यक्त की है।

भारत के निर्वाचन आयोग की सहायता करने के लिए प्रत्येक राज्य में एक मुख्य निर्वाचन अधिकारी होता है। निर्वाचन आयोग स्थानीय निकायों के चुनाव के लिए ज़िम्मेदार नहीं होता। जैसा कि हम स्थानीय सरकारों वाले अध्याय में पढ़ेंगे, इसके लिए राज्यों में राज्य निर्वाचन आयुक्त होते हैं, जो निर्वाचन आयोग से अलग कार्य करते हैं और इनमें से प्रत्येक का काम करने का अपना अलग दायरा है।

भारत का निर्वाचन आयोग एक सदस्यीय या बहु-सदस्यीय भी हो सकता है। 1989 तक, निर्वाचन आयोग एक-सदस्यीय था। 1989 के आम चुनावों के ठीक पहले, दो अन्य निर्वाचन आयुक्तों को नियुक्त कर इसे बहु-सदस्यीय बना दिया गया। चुनावों के बाद उसे फिर एक सदस्यीय बना दिया गया। 1993 में पुन: दो निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति हुई और निर्वाचन आयोग बहु-सदस्यीय हो गया; तब से यह बहु-सदस्यीय बना हुआ है। शुरू में बहु-सदस्यीय निर्वाचन आयोग को लेकर तरह-तरह की शंकाएँ थीं। मुख्य निर्वाचन आयुक्त और अन्य आयुक्तों के बीच इस बात पर घोर मतभेद था कि किसको कितनी शक्ति प्राप्त है। इसका समाधान सर्वोच्च न्यायालय को करना पड़ा। अब इस बात पर सामान्य सहमति है कि बहु-सदस्यीय

निर्वाचन आयोग ज़्यादा उपयुक्त है क्योंकि इससे आयोग की शक्तियों में साझेदारी हो गई है और आयोग पहले से कहीं ज़्यादा जवाबदेह बन गया है।

मुख्य निर्वाचन आयुक्त निर्वाचन आयोग की अध्यक्षता करता है, लेकिन अन्य दोनों निर्वाचन आयुक्तों की तुलना में उसे ज़्यादा शक्तियाँ प्राप्त नहीं हैं। एक सामूहिक संस्था के रूप में चुनाव संबंधी सभी निर्णय में मुख्य निर्वाचन आयुक्त और अन्य दोनों निर्वाचन आयुक्तों की शक्तियाँ समान हैं। उनकी नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा मंत्रि परिषद् के परामर्श पर की जाती है। ऐसे में संभव है कि सरकार के द्वारा किसी ऐसे हितैषी की नियुक्ति निर्वाचन आयोग में कर दी जाए जो चुनावों में सरकार का समर्थन करे। इस शंका के चलते अनेक लोगों ने इस प्रक्रिया को बदलने का सुझाव दिया है। उनका सुझाव है कि इसके लिए एक भिन्न प्रक्रिया का पालन किया जाना चाहिये, जिसमें मुख्य निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति में विपक्ष के नेता और भारत के मुख्य न्यायाधीश से परामर्श करना ज़रूरी होना चाहिए।

क्या अब यह व्यवस्था स्थायी हो गई है या सरकार एक सदस्यीय निर्वाचन आयोग को दुबारा कायम कर सकती है? क्या संविधान इस खेल की आज्ञा देता है?

संविधान मुख्य निर्वाचन आयुक्त और निर्वाचन आयुक्तों के कार्यकाल की सुरक्षा देता है। उन्हें 6 वर्षों के लिए अथवा 65 वर्ष की आयु तक (जो पहले खत्म हो) के लिए नियुक्त किया जाता है। मुख्य निर्वाचन आयुक्त को कार्यकाल समाप्त होने के पूर्व राष्ट्रपति द्वारा हटाया जा सकता है; पर इसके लिए संसद के दोनों सदनों को विशेष बहुमत से

विशेष बहुमत

विशेष बहुमत का अर्थ है –

- उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों का दो-तिहाई बहुमत; और
- सदन की कुल सदस्य संख्या का साधारण बहुमत

मान लीजिए कि आपको अपनी कक्षा में विशेष बहुमत से एक प्रस्ताव पास करना है। कल्पना करें कि आप की कक्षा में 75 विद्यार्थी हैं। लेकिन मतदान के दिन केवल 51 विद्यार्थी उपस्थित हैं और उनमें केवल 50 ने ही मतदान में भाग लिया। इस परिस्थिति में आप कब कह सकेंगे कि प्रस्ताव 'विशेष बहुमत' से पास हो गया है?

इस पुस्तक के कम से कम तीन अध्यायों में आपको 'विशेष बहुमत' का उल्लेख मिलेगा। एक तो कार्यपालिका से संबंधित अगले ही अध्याय में है जहाँ राष्ट्रपति पर महाभियोग का उल्लेख किया गया है। अन्य उन दो स्थानों को ढूँढ़ें जहाँ पर विशेष बहुमत की चर्चा की गई है।

पारित कर इस आशय का एक प्रतिवेदन राष्ट्रपति को भेजना होगा। ऐसा यह सुनिश्चित करने के लिए किया गया है कि कोई भी सरकार उस मुख्य निर्वाचन आयुक्त को न हटा सके जो चुनावों में उसकी तरफदारी करने से मना करे। निर्वाचन आयुक्तों को भारत का राष्ट्रपति हटा सकता है।

भारत के निर्वाचन आयोग के पास काफी सारे काम हैं।

- वह मतदाता सूचियों को नया करने के काम की देख-रेख करता है। पूरा प्रयास करता है कि मतदाता सूचियों में गलतियाँ न हो अर्थात् पंजीकृत मतदाताओं के नाम न छूट जाएँ और न ही उसमें ऐसे लागों के नाम हों जो मतदान के अयोग्य हों या जीवित ही न हों।
- वह चुनाव का समय और चुनावों का पूरा कार्यक्रम तय करता है। इस कार्यक्रम में निम्न बातों का उल्लेख होता है – चुनाव की अधिघोषणा, नामांकन प्रक्रिया शुरू करने की तिथि, मतदान की तिथि, मतगणना की तिथि और चुनाव परिणामों की घोषणा।
- इस पूरी प्रक्रिया में, निर्वाचन आयोग को स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव कराने के लिए निर्णय लेने का अधिकार है। वह पूरे देश, किसी राज्य या किसी निर्वाचन क्षेत्र में चुनावों को इस आधार पर स्थगित या रद्द कर सकता है कि वहाँ माकूल माहौल नहीं है तथा स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव कराना संभव नहीं है। निर्वाचन आयोग राजनीतिक दलों और उनके उम्मीदवारों के लिए एक आदर्श आचार संहिता लागू करता है। वह किसी भी निर्वाचन क्षेत्र में दोबारा चुनाव कराने की आज्ञा दे सकता है। यदि उसे लगे कि मतगणना प्रक्रिया पूरी तरह से उचित और न्यायपूर्ण नहीं थी तो वह वह दोबारा मतगणना कराने की भी आज्ञा दे सकता है।
- निर्वाचन आयोग राजनीतिक दलों को मान्यता देता है और उन्हें चुनाव चिह्न आबंटित करता है।

निर्वाचन आयोग के पास बहुत ही सीमित कर्मचारी होते हैं। वह प्रशासनिक मशीनरी की मदद से चुनाव कराता है। लेकिन एक बार चुनाव प्रक्रिया शुरू हो जाने पर चुनाव संबंधी कार्यों के संबंध में आयोग का पूरी प्रशासनिक मशीनरी पर नियंत्रण हो जाता है। चुनाव प्रक्रिया के दौरान राज्य और केंद्र सरकार के प्रशासनिक अधिकारियों को चुनाव संबंधी कार्य दिये जाते हैं; और इस संबंध में निर्वाचन आयोग का उन पर पूरा नियंत्रण होता है। निर्वाचन आयोग इन अधिकारियों का तबादला कर सकता है या उनके तबादले को रोक सकता है; अधिकारी निष्पक्ष ढंग से काम करने में विफल रहे तो आयोग उसके विरुद्ध कार्रवाई भी कर सकता है।

विगत वर्षों में, निर्वाचन आयोग एक स्वतंत्र सत्ता के रूप में उभरा है जिसने चुनाव प्रक्रिया की निष्पक्षता सुनिश्चित करने के लिए अपनी शक्तियों का प्रयोग किया

है। उसने चुनाव प्रक्रिया की गरिमा बनाये रखने के लिए निष्पक्ष और न्यायपूर्ण ढंग से काम किया है।

निर्वाचन आयोग का इतिहास इस बात का गवाह है कि संस्थाओं की कार्यप्रणाली में प्रत्येक सुधार के लिए कानूनी या संवैधानिक परिवर्तन आवश्यक नहीं। यह आम धारणा है कि 20 वर्ष पहले के मुकाबले आज निर्वाचन आयोग ज़्यादा स्वतंत्र और प्रभावी है। ऐसा इसलिए नहीं कि निर्वाचन आयोग की शक्तियाँ या उसकी संवैधानिक सुरक्षा बढ़ा दी गई है। दरअसल निर्वाचन आयोग ने केवल उन शक्तियों का और प्रभावशाली ढंग से प्रयोग करना शुरू कर दिया है जो उसे संविधान में पहले से ही प्राप्त थीं।

पिछले पचपन वर्षों में लोकसभा के चौदह चुनाव हो चुके हैं। निर्वाचन आयोग के द्वारा विधान सभाओं के अनेक चुनाव और उप-चुनाव कराये गये। निर्वाचन आयोग को असम, पंजाब तथा जम्मू और कश्मीर जैसे हिंसाग्रस्त क्षेत्रों में चुनाव कराने में अनेक कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ा है। उसे 1991 में पूरी चुनाव प्रक्रिया को बीच में ही रोकना पड़ा क्योंकि चुनाव प्रचार के दौरान 2002 में पूर्व प्रधानमंत्री राजीव गांधी की हत्या कर दी गई। निर्वाचन आयोग को एक अन्य गंभीर समस्या का सामना करना पड़ा जब गुजरात विधान सभा भंग कर दी गई और चुनाव कराना पड़ा। लेकिन निर्वाचन आयोग ने पाया कि राज्य में अप्रत्याशित हिंसा के कारण स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव कराना तुरंत संभव न था। निर्वाचन आयोग ने राज्य में विधान सभा चुनावों को कुछ महीनों के लिए स्थगित करने का निर्णय लिया। सर्वोच्च न्यायालय ने निर्वाचन आयोग के इस निर्णय को वैध ठहराया।

कार्टून बूझें

आर. के. लक्ष्मण, टाइम्स ऑफ इंडिया

सावधान! चुनाव जितना अब मुश्किल काम होने वाला है। अब नई आचार संहिता, सही और स्वच्छ मतदान तथा कड़े अनुशासन जैसी नई मुसीबतों को झेलना पड़ेगा।

नेताजी चुनाव आयोग से डर गये हैं, वे कह रहे हैं कि हमें 'निष्पक्ष और स्वतंत्र चुनाव' की चुनौती झेलनी है। नेता चुनाव आयोग से डरते क्यों हैं? क्या यह स्थिति लोकतंत्र के लिए अच्छी है?

कहाँ पहुँचे? क्या समझे?

निर्वाचन आयोग को इन शक्तियों और विशेषाधिकारों को देने के बारे में आप क्या सोचते हैं?

यदि ऐसा नहीं किया जाता तो क्या होता?

- निर्वाचन आयोग चुनाव संबंधी कार्यों में लगाये गये सरकारी कर्मचारियों को आदेश दे सकता है।
- सरकार मुख्य निर्वाचन आयुक्त को नहीं हटा सकती।
- आयोग उस चुनाव को रद्द कर सकता है जो उसे निष्पक्ष न लगे।

क्या कानून में परिवर्तन करके चुनावों में धन और बल के प्रयोग को रोका जा सकता है? क्या केवल कानून बदलने से कोई चीज़ वास्तव में बदलती है?

चुनाव सुधार

चुनाव की कोई प्रणाली कभी आदर्श नहीं हो सकती। उसमें अनेक कमियाँ और सीमाएँ होती हैं। लोकतांत्रिक समाज को अपने चुनावों को और अधिक स्वतंत्र और निष्पक्ष बनाने के तरीकों को बराबर खोजते रहना पड़ता है। वयस्क मताधिकार, चुनाव लड़ने की स्वतंत्रता और एक स्वतंत्र निर्वाचन आयोग की स्थापना को स्वीकार कर भारत में चुनावों को स्वतंत्र और निष्पक्ष बनाने की कोशिश की गई है। लेकिन पिछले पचास वर्षों के अनुभवों के बाद हमारी चुनाव प्रणाली में सुधार के लिए अनेक सुझाव दिये गये हैं। चुनाव सुधारों के सुझाव निर्वाचन आयोग, विभिन्न राजनीतिक दलों, स्वतंत्र समूहों और अनेक विद्वानों द्वारा दिये गये हैं। इनमें से कुछ सुझाव इस अध्याय में उल्लिखित संवैधानिक प्रावधानों को संशोधित करने के बारे में हैं।

- हमारी चुनाव व्यवस्था को सर्वाधिक मत से जीत वाली प्रणाली के स्थान पर किसी प्रकार की समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली लागू करना चाहिये। इससे राजनीतिक दलों को उसी अनुपात में सीटें मिलेंगी जिस अनुपात में उन्हें वोट मिलेंगे।

- संसद और विधान सभाओं में एक तिहाई सीटों पर महिलाओं को चुनने के लिए विशेष प्रावधान बनाये जाएँ।
- चुनावी राजनीति में धन के प्रभाव को नियंत्रित करने के लिए और अधिक कठोर प्रावधान होने चाहिये। सरकार को एक विशेष निधि से चुनावी खर्चों का भुगतान करना चाहिये।
- जिस उम्मीदवार के विरुद्ध फौजदारी का मुकदमा हो उसे चुनाव लड़ने से रोक दिया जाना चाहिये, भले ही उसने इसके विरुद्ध न्यायालय में अपील कर रखी हो।
- चुनाव-प्रचार में जाति और धर्म के आधार पर की जाने वाली किसी भी अपील को पूरी तरह से प्रतिबंधित कर देना चाहिये।
- राजनीतिक दलों की कार्य प्रणाली को नियंत्रित करने के लिए तथा उनकी कार्यविधि को और अधिक पारदर्शी तथा लोकतांत्रिक बनाने के लिए एक कानून होना चाहिये।

ये कुछ सीमित सुझाव हैं। इन सुझावों पर कोई आम राय नहीं है। लेकिन यदि उन पर आम राय बन भी जाये तो भी कानून और औपचारिक प्रावधान एक सीमा तक ही कारगर हो सकते हैं। **वास्तव में स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव तभी हो सकते हैं जब सभी उम्मीदवार, राजनीतिक दल और वे सभी लोग जो चुनाव प्रक्रिया में भाग लेते हैं– लोकतांत्रिक प्रतिस्पर्धा की भावना का सम्मान करें।**

कार्टून बूझें

पुरानी आदत छोड़ो और कैमरे के सामने आओ। अब तो तुम्हें टिकट मिल गया है और चुनाव लड़ना है।

© आर.के. लक्ष्मण, टाइम्स ऑफ इंडिया

क्या गंभीर अपराध में संलिप्त अपराधी के चुनाव लड़ने पर प्रतिबंध होना चाहिए?

कानूनी सुधारों के अतिरिक्त, दो और तरीके हैं जिनसे यह सुनिश्चित किया जा सकता है कि चुनाव जनता की अपेक्षाओं और लोकतांत्रिक आकांक्षाओं को व्यक्त करे। पहला तो यह कि जनता को स्वयं ही और अधिक सतर्क रहना चाहिये तथा राजनीतिक कार्यों में और सक्रियता से भाग लेना

चाहिये। लेकिन आम आदमी के लिए नियमित रूप से राजनीति में भाग लेने की अपनी सीमाएँ हैं। इसलिए, यह ज़रूरी है कि अनेक राजनीतिक संस्थाओं और राजनीतिक संगठनों का विकास किया जाय जो स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव सुनिश्चित कराने के लिए पहरेदारी करें।

निष्कर्ष

जिन देशों में प्रतिनिधित्व वाला लोकतंत्र है वहाँ चुनाव और चुनाव का प्रतिनिधित्व वाला स्वरूप लोकतंत्र को प्रभावी और विश्वसनीय बनाने में निर्णायक भूमिका निभाता है। भारत में चुनाव व्यवस्था की सफलता अनेक आधारों पर मापी जा सकती है।

- एक, हमारी चुनाव व्यवस्था ने मतदाताओं को न केवल अपने प्रतिनिधियों को चुनने की स्वतंत्रता दी है, बल्कि उन्हें केंद्र और राज्यों में शांतिपूर्ण ढंग से सरकारों को बदलने का अवसर भी दिया है।
- दो, मतदाताओं ने चुनाव प्रक्रिया में लगातार रुचि ली है और उसमें भाग लिया है। चुनावों में भाग लेने वाले उम्मीदवारों और दलों की संख्या लगातार बढ़ रही है।
- तीन, चुनाव व्यवस्था में सभी को स्थान मिला है और यह सभी को साथ लेकर चली है। हमारे प्रतिनिधियों की सामाजिक पृष्ठभूमि भी धीरे-धीरे बदली है। अब हमारे प्रतिनिधि विभिन्न सामाजिक वर्गों से आते हैं, यद्यपि इनमें अभी महिलाओं की संख्या में संतोषजनक वृद्धि नहीं हुई है।
- चार, देश के अधिकतर भागों में चुनाव परिणाम चुनावी अनियमितताओं और धाँधली से प्रभावित नहीं होते यद्यपि चुनाव में धाँधली करने के अनेक प्रयास किये जाते हैं। आपने चुनावों में हिंसा, मतदाता सूचियों से वोटरों के नाम गायब होने की शिकायतें, डराये-धमकाए जाने आदि की शिकायतें अकसर सुनी होंगी। फिर भी, ऐसी घटनाओं से शायद ही कोई चुनाव परिणाम प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होता हो।
- अंतिम और सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि चुनाव हमारे लोकतांत्रिक जीवन के अभिन्न अंग हो गये हैं। कोई इस बात की कल्पना भी नहीं कर सकता कि कभी कोई सरकार चुनावों में जनादेश का उल्लंघन भी करेगी। इसी तरह, कोई यह भी कल्पना नहीं कर सकता कि बिना चुनावों के कोई सरकार बन सकेगी। वास्तव में, भारत में निश्चित

अंतराल पर होने वाले नियमित चुनावों को एक महान लोकतांत्रिक प्रयोग के रूप में ख्याति मिली है।

- इन सभी बातों से हमारी चुनाव व्यवस्था को देश-विदेश में आदर से देखा जाता है। भारत में मतदाता के अंदर आत्मविश्वास बढ़ा है। मतदाताओं की निगाह में निर्वाचन आयोग का कद बढ़ा है। यह हमारे संविधान निर्माताओं के मूल निर्णयों को उचित ठहराता है। यदि चुनाव प्रक्रिया को कुछ और दोषरहित बनाया जा सके तो हम मतदाता और नागरिक के रूप में लोकतंत्र के इस महोत्सव का और अच्छी तरह आनंद उठा सकेंगे तथा इसे और अर्थपूर्ण बना सकेंगे।

प्रश्नावली

1. निम्नलिखित में कौन प्रत्यक्ष लोकतंत्र के सबसे नजदीक बैठता है?
   (क) परिवार की बैठक में होने वाली चर्चा
   (ख) कक्षा-संचालक (क्लास-मॉनीटर) का चुनाव
   (ग) किसी राजनीतिक दल द्वारा अपने उम्मीदवार का चयन
   (घ) मीडिया द्वारा करवाये गये जनमत-संग्रह

2. इनमें कौन-सा कार्य चुनाव आयोग नहीं करता?
   (क) मतदाता-सूची तैयार करना
   (ख) उम्मीदवारों का नामांकन
   (ग) मतदान-केंद्रों की स्थापना
   (घ) आचार-संहिता लागू करना
   (ङ) पंचायत के चुनावों का पर्यवेक्षण

3. निम्नलिखित में कौन-सी राज्य सभा और लोक सभा के सदस्यों के चुनाव की प्रणाली में समान है?
   (क) 18 वर्ष से ज्यादा की उम्र का हर नागरिक मतदान करने के योग्य है।
   (ख) विभिन्न प्रत्याशियों के बारे में मतदाता अपनी पसंद को वरीयता क्रम में रख सकता है।

(ग) प्रत्येक मत का समान मूल्य होता है
(घ) विजयी उम्मीदवार को आधे से अधिक मत प्राप्त होने चाहिए।

4. फर्स्ट पास्ट द पोस्ट प्रणाली में वही प्रत्याशी विजेता घोषित किया जाता है जो –
(क) सर्वाधिक संख्या में मत अर्जित करता है।
(ख) देश में सर्वाधिक मत प्राप्त करने वाले दल का सदस्य हो।
(ग) चुनाव-क्षेत्र के अन्य उम्मीदवारों से ज़्यादा मत हासिल करता है।
(घ) 50 प्रतिशत से अधिक मत हासिल करके प्रथम स्थान पर आता है।

5. पृथक निर्वाचन-मंडल और आरक्षित चुनाव-क्षेत्र के बीच क्या अंतर है? संविधान निर्माताओं ने पृथक निर्वाचन-मंडल को क्यों स्वीकार नहीं किया?

6. निम्नलिखित में कौन-सा कथन गलत है? इसकी पहचान करें और किसी एक शब्द अथवा पद को बदलकर, जोड़कर अथवा नये क्रम में सजाकर इसे सही करें।
(क) एक फर्स्ट-पास्ट-द-पोस्ट प्रणाली ('सबसे आगे वाला जीते प्रणाली') का पालन भारत के हर चुनाव में होता है।
(ख) चुनाव आयोग पंचायत और नगरपालिका के चुनावों का पर्यवेक्षण नहीं करता।
(ग) भारत का राष्ट्रपति किसी चुनाव आयुक्त को नहीं हटा सकता।
(घ) चुनाव आयोग में एक से ज़्यादा चुनाव आयुक्त की नियुक्ति अनिवार्य है।

7. भारत की चुनाव-प्रणाली का लक्ष्य समाज के कमज़ोर तबके की नुमाइंदगी को सुनिश्चित करना है। लेकिन अभी तक हमारी विधायिका में महिला सदस्यों की संख्या 10 प्रतिशत तक भी नहीं पहुँचती। इस स्थिति में सुधार के लिए आप क्या उपाय सुझायेंगे?

8. एक नये देश के संविधान के बारे में आयोजित किसी संगोष्ठी में वक्ताओं ने निम्नलिखित आशाएँ जतायीं। प्रत्येक कथन के बारे में बतायें कि उनके लिए फर्स्ट-पास्ट-द-पोस्ट (सर्वाधिक मत से जीत वाली प्रणाली) उचित होगी या समानुपातिक प्रतिनिधित्व वाली प्रणाली?
(क) लोगों को इस बात की साफ-साफ जानकारी होनी चाहिए कि उनका प्रतिनिधि कौन है ताकि वे उसे निजी तौर पर जिम्मेदार ठहरा सकें।

(ख) हमारे देश में भाषाई रूप से अल्पसंख्यक छोटे-छोटे समुदाय हैं और देश भर में फैले हैं, हमें इनकी ठीक-ठीक नुमाइंदगी को सुनिश्चित करना चाहिए।

(ग) विभिन्न दलों के बीच सीट और वोट को लेकर कोई विसंगति नहीं रखनी चाहिए।

(घ) लोग किसी अच्छे प्रत्याशी को चुनने में समर्थ होने चाहिए भले ही वे उसके राजनीतिक दल को पसंद न करते हों।

9. एक भूतपूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त ने एक राजनीतिक दल का सदस्य बनकर चुनाव लड़ा। इस मसले पर कई विचार सामने आये। एक विचार यह था कि भूतपूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त एक स्वतंत्र नागरिक है। उसे किसी राजनीतिक दल में होने और चुनाव लड़ने का अधिकार है। दूसरे विचार के अनुसार, ऐसे विकल्प की संभावना कायम रखने से चुनाव आयोग की निष्पक्षता प्रभावित होगी। इस कारण, भूतपूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त को चुनाव लड़ने की अनुमति नहीं देनी चाहिए। आप इसमें किस पक्ष से सहमत हैं और क्यों?

10. भारत का लोकतंत्र अब अनगढ़ 'फर्स्ट पास्ट द पोस्ट' प्रणाली को छोड़कर समानुपातिक प्रतिनिध्यात्मक प्रणाली को अपनाने के लिए तैयार हो चुका है' क्या आप इस कथन से सहमत हैं? इस कथन के पक्ष अथवा विपक्ष में तर्क दें।